Reg No 177/2008-2009 ISSN: 2322–0317

PSSH PERSPECTIVE of SOCIAL SCIENCES and HUMANITIES

An International Multidisciplinary Refereed Research Journal

VOL 2, NO 2

JULY - DECEMBER 201

Biannual

Editor

Dr Hemant Kumar Singh

Assistant Professor

Economics Department

Madan Mohan Malviya PG College

Deoria (UP)

Publisher

Herambh Welfare Society

Varanasi (India)

मध्यकालीन हिंदी काव्य में स्त्री-विमर्श

विजेन्द्र प्रताप सिंह[1]

भारतीय एवं विश्व के इतिहास में एक समय विशेष को 'मध्यकाल' या 'मध्ययुग' जैसा नाम प्रदान किया गया है। हिंदी साहित्य के इतिहास में भी 'मध्यकाल' एक समय विशेष का द्योतक है। मध्यकाल की अवधारणा से आशय- अंग्रजी में मध्यकाल हेतु 'मेडिईवल'(Medieval) और अवधारणा शब्द के लिए 'कान्सेप्ट'(concept) शब्द व्यवहृत होता है। मेडिईवल का अर्थ है- 1100 ई. से 1400 ई. के मध्य का समय। (डॉ. सुरेश कुमार एवं डॉ.रामनाथ शाही, पृष्ठ सं.749) कान्सेप्ट का अर्थ है-''धारणा, संकल्पना, सामान्य विचार भावना, भावना''। (डॉ. सुरेश कुमार एवं डॉ.रामनाथ शाही, पृष्ठ सं.240) डॉ. हरदेव बाहरी द्वारा संपादित 'राजपाल हिन्दी शब्दकोश' में 'मध्यकाल के तीन अर्थ दिया गया है-

1. ''भारत के इतिहास में मुस्लिम काल का समय, 2. प्राचीन एवं अर्वाचीन के बीच का समय, 3. ''यूरोप में 6वीं से 15वीं शताब्दी के बीच का समय।'' (राजपाल हिंदी शब्दकोश, सं.डॉ.हरदेव बाहरी, पृष्ठ सं. 635)

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवदी मध्यकाल की समय सीमा विश्व इतिहास में '476 ई. से 1553 ई. के बीच के समय को मानते हैं। (डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, मध्यकालीन बोध का स्वरूप , पृष्ठ सं. 17) भारतीय इतिहास में '8वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी'5 के बीच के समय को निर्धारित किया है। मध्यकाल समय विश्व इतिहास में 5वीं-6वीं शताब्दी से लेकर 15वीं-16वीं शताब्दी लगभग 1000 वर्षों का और भारतीय इतिहास में 8वीं शताब्दी से लेकर 18वीं शताब्दी लगभग 1200 वर्षों के मध्य के समय को माना जा सकता है। मध्य काल में वैसे तो भक्ति साहित्य का प्राचूर्य देखा जाता है परंतु इस काल में भी स्त्री चेतना के स्वर मुखरित हुए। प्रस्तुत शोध लेख में इसी चेतना पर दृष्टिपात किया जा रहा है।

वैदिक युग में नारियों की स्थति आदरणीय एवं श्रेष्ठ थी। यह भी माना जाता है कि प्राचीन काल में स्त्री सम्मानीय रहीं। विद्या का आदर्श 'सरस्वती' में धन का 'लक्ष्मी' में, शक्ति का दुर्गा में, सौन्दर्य का 'रति' में, पवित्रता का 'गंगा', में इतना ही नहीं सर्वव्यापी ईश्वर को भी जगत-जननी के नाम से सुशोभित किया गया। कालान्तर में स्त्री की दशा

[1] सहायक प्रोफेसर (हिंदी), राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जलेसर, एटा, उत्तर प्रदेश

बद् से बदतर होती गयी। पुरुष की निगाह में वह अब सिर्फ देह मात्र ही बनकर रह गयी, उसका अपना अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया। पुरुष समाज उस पर हावी हो गया। ऐसे में विभिन्न साहित्यकारों ने उसकी वेदना को समझा और साहित्य के माध्यम से उसकी मुक्ति का प्रयास किया। जिस देश में नारी की स्थिति में इतने उतार चढ़ाव आये हो, वहां का साहित्य भी उसके प्रभाव से अछूता नहीं रह सकता।

भक्तिकाल की अवधि में रचित साहित्य को कई प्रवृत्तियों के आधार पर आकलित किया गया। भक्ति भावना के प्राचुर्य और अधिकांशत: मुनियों एवं संतों द्वारा लिखे जाने के कारण इसे संत साहित्य भी कहा गया है। भक्ति के साथ आंदोलन शब्द जुड़ने से उस काल की साहित्यिक धारा की सोद्देश्यता स्वयं लक्षित होती हैं। सामान्यतभक्ति का अर्थ नितांत : व्यक्तिवादी, पलायनवादी और इस संसार के समस्त क्रियाकलापों को व्यर्थ मानकर विरत हो जाना माना जाता है। किन्तु भक्ति काल के सभी संतों और भक्त कवियों ने लोकमंगल की उदात्त भावना को अपनी रचनाओं में पिरोया है। स्वयं की मुक्ति के साथ उनकी वाणी मुखरित हुई। उनकी यह भावना राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक पर्यावरण को भी पर्याप्त रूप से प्रभावित करती है। इस काल के कवियों ने अपनी ईष्ट भक्ति को एकांतिक एवं निजी नहीं बनया बल्कि उसमें आम जन भी शामिल किए। सहज सरल मानव जीवन के प्रति आस्था ने मानव जीवन के बीच के भेदभाव को समाप्त करने की दिशा में संदेश दिया। जातिपांति, ऊंचनीच, कर्मकांड तथा धार्मिक असहिष्णुता की कठोरता को शिथिल करने का आग्रह पाया जाता है। भक्तिकाल की विशिष्टताओं पर विचार करते हुए डॉ. ग्रियर्सन ने लिखा है कि कोई भी मनुष्य जिसे 15वीं तथा बाद की शताब्दियों का साहित्य पढ़ने का अवसर मिलता है , उस भारी व्यवधान को लक्ष्य किए बिना नहीं रह सकता है और जो प्राचीन एवं नई धार्मिक भावनाओं में विद्यमान है। हम अपने आप को ऐसे धार्मिक आंदोलन में पाते हैं जो उन सब आंदोलनों से कहीं अधिक व्यापक और विशाल है क्योंकि उनका प्रभाव आज भी समाज पर विद्यमान है। इस युग में धर्म ज्ञान का नहीं बल्कि भावावेश का विषय हो गया था। यहाँ से हम साधना और प्रेमोल्लास के देश में आते हैं।.....

स्त्री-विमर्श वर्तमान साहित्य-चिन्तन का एक सुचिन्तित पक्ष है। स्त्री विमर्श और दलित-विमर्श हिन्दी साहित्य के मनीषियों के लिए आज लुभावने क्षेत्र हैं। विमर्श को कभी किसी काल सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता है। यह किसी सिद्धान्त विशेष के रूप में भी सीमित नहीं हो सकता है। विमर्श तो जीवन-संदर्भित चिन्तन का एक सतत् प्रवाह होता है जो विभिन्न माध्यमों से विभिन्न रूपों में प्रकाशित होता है। जीवन के अनुभूतिगत प्रकाश का प्रकाशन ही विमर्श है। मानव का सामाजिक स्वरूप और तज्जन्य सामाजिक व्यवस्था पुरुष और नारी के शारीरिक, मानसिक और भौतिक संदर्भों में सामरस्य हेतु बनी परस्पर सहमति का परिणाम है। मानव-जीवन में सामरस्य की खोज में हुए विमर्श का परिणाम ही समाज की परिवार व्यवस्था है। परिवार के रूप

में स्त्री और पुरुष ने अपनी रागात्मक वृत्ति को आधार बनाकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक ऐसी सामाजिक संस्था का विकास किया जिसका विस्तार करते हैं जिसका एक प्रधान अंग नारी है। यह प्राचीन काल में था और वर्तमान काल में है। उस भक्तिकालीन साहित्य में स्त्री वेदना को बहुत ही अच्छे ढंग से मुखरित किया गया परंतु अभाव रहा उसे समझने वालों का। वर्तमान काल में इस दिशा में लेखनी चलाई जाने लगी तो यह एक विमर्श के रूप में सामने आया है।

हिंदी साहित्य के आदि काल में अभी तक प्राप्त इतिहासों में सिद्ध साहित्य में तीन योगिनियों के नाम मिलते हैं, इनकी कोई भी रचना के बारे में चर्चा कहीं नहीं है। आदि काल का साहित्य फलक काफी व्यापक है। इतना लम्बा समय और इतनी विविध प्रवृत्तियों के बीच किसी स्त्री लेखक का न पाया जाना समाज को चिंतित करने के लिए पर्याप्त है। आदि काल में स्त्रियों द्वारा की गई रचनाएँ न मिलने के तर्क को हिंदी आलोचक कुछ इस तरह से व्यक्त करते हैं - 'स्त्रियों के लिए यह आवश्यक न था कि वे वीर काव्य गाते हुए रणांगण में आवें। उनका एक अनिवार्य कर्तव्य यही रह गया था कि वे विजयश्री को देखकर प्रमोदामोद से वीर पुरुषों की आरती उतारें या पराजय कालिमा को देखकर शत्रुओं के अनाचार प्रारम्भ से पूर्व ही जौहर आदि के द्वारा देश और समाज की लज्जा की रक्षा करते हुए अपने पंचभौतिक-पिंजर से प्राण पखेरुओं को निकालकर स्वर्गारोहण करें...यही मुख्य बात है कि जय काव्य काल में स्त्रियों ने साहित्य रचना के क्षेत्र में कार्य नहीं किया।' इस तर्क को मान लेना ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा हो नहीं सकता कि जब स्त्री प्राचीन काल से इतनी सशक्त रही तो इस काल में आकर पूरी तरह से हर क्षेत्र में दब कर रह गई हो। कहीं न कहीं उसकी प्राचीन परंपरा जीवित अवश्य रही होगी। ये और बात है कि उसने जो साहित्य रचना वह चारदीवारी में घुट कर रह गया परंतु कहीं न कहीं उसके अवशेष अवश्य रह गए होंगे। आवश्यकता है उन्हें खोजे जाने की। हिंदी रासो काव्य में भी स्त्री जीवन-अस्मिता को लेकर अन्तर्द्वन्द्व विद्रोह और स्वातंत्र्य के लिए छटपटाहट दिखाई देती है। पृथ्वीराज रासो की पद्मावती हो या बीसलदेव रासो की राजमती, पुरुष प्रधानसमाज के निरंकुश तंत्रा को चुनौती देती हुई अपने अस्तित्त्व को प्रतिष्ठित करती हुई नारी की वैयक्तिक पहचान और स्त्री मुक्ति आन्दोलन की पहल सी दिखाई देती हैं।

जायसी का स्त्री विमर्श

सूफी काव्य धारा के अमर कवि जायसी अपनी रचना पद्मावत में कथा सूत्रों से जिस रचनातंत्र की रचना करते हैं उसकी धुरी आदि से अन्त तक स्त्री-विमर्श ही है। पद्मावत में पद्मावती और नागमती का जिन जीवन संदर्भों में रखकर जायसी द्वारा प्रस्तुततीकरण किया गया है उनसे स्त्री चेतना एवं अस्मिता को केन्द्र में रखकर स्त्री-

विमर्श को प्रस्तुत कर पाने का एक सशक्त आधार प्राप्त होता है। पद्मावत में पद्मावती और नागमती की चरित्र-संकल्पना मानव-समाज में विसंगतियों से घिरे हुए स्त्री जीवन की व्यथा-कथा है। प्रस्तुत कथा पुरुष-प्रधान समाज में स्त्री-अस्मिता के संदर्भ में अनेक प्रश्न खड़े करके स्त्री विमर्श को गति प्रदान करती है। जायसी ने अपने स्त्री-विमर्श में स्त्री जीवन की चिन्ताओं से ग्रस्त होकर उसके समाधान की व्यंजना भी है।

'पद्मावत' में स्त्री विमर्श पूरी तरह से अभिव्यंजित हुआ है। पद्मावती के प्रसंग में स्त्री-जीवन को उसके बाल्यकाल से विवाहोत्तर काल तक बहुत बारीकी से प्रस्तुत किया गया है। पुरुष प्रधान समाज में स्त्री का सम्पूर्ण अस्ितत्व पुरुष की भोग्या के रूप में ही देखा जाता रहा है। पुरूष अपने स्वार्थ से ग्रस्त होकर स्त्री को वर्जनाओं के घेरे में बाल्यकाल से ही डालने का पक्षधर रहा है। वह कभी भी नहीं चाहता कि विवाह से पूर्व किसी भी नारी को काम-भावना का बोध हो। पुरुष की इस प्रकार की सोच स्त्री के स्वाभाविक मनोविज्ञान के विपरीत है। स्वाभाविक विकास को वर्जनाओं की बेड़ियों में जकड़कर नहीं रोका जा सकता। पुरुष की इसी कुण्ठा का प्रतिफल है कि स्त्री-पुरुष संबंधों को लेकर समाज में निरन्तर टकराहट की स्थिति बनी रहती है। जायसी पुरुष की इसी सोच और महिला मनोविज्ञान के अनुपम पारखी के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत हुए। वे पद्मावती के विवाह पूर्व जीवन के द्वारा इसी तथ्य की अभिव्यंजना करते हैं जिसे उनके स्त्री विमर्श का क्रमबद्ध आयाम माना जा सकता है। पद्मावती जब मात्र बारह वर्ष की होती है तब उसके पिता द्वारा वर्जनाओं की बेडियों में जकड़ दिया जाता है, यथा-

बारह बारह माहै भई रानी। राजै सुना संजोग सयानी।
सात खंड धौराहर तासू। सो पद्मिनी कहँ दीन निवास।
और दीनी संग सखी सहेली। जो संग करै रहसि रस केली।
सबै नवल पिउ संग न सोई। कँवल पास जनु बिगसी कोई।

पुरुष की ये वर्जनाएँ स्त्री के स्वाभाविक विकास बाधित नहीं कर सकती हैं और प्रकृति का नियम है वह तो होकर ही रहता है। काम भावना प्रत्येक स्त्री में स्वाभाविक है उसे चाहे जितना भी रोका जाए वह तो यथासमय उत्पन्न होगी ही। पद्मावती में भी स्वाभाविक रूप से काम-भावना का विकास होता है और पुरुष की इस मनोवृत्ति को लक्ष्य कर अपने पिता को केंद्र में रखकर पद्मावती नारी की वेदना करते हुए कहती है –

एक दिवस पद्मावति सनी। हीरामनि तइँ कहा सयानी।
सुनु हीरामनि कहौं बुझाई। दिन-दिन मदन सतावै आई।
पिता हमार न चालै बाबा। त्रासहि बोलि सकै नहिं माता।

जायसी पद्मावती माध्यम से माता के संदर्भ से पति के त्रास से नारी के घुटन भरे जीवन की व्यंजना करते हैं। नारी की क्या ही अजीब नियति रही है कि वह अपने पति को उचित सलाह भी देने में भी डरती है।

नारी-जीवन की यह नियति रही है कि वह हमेशा अपने भविष्य को लेकर अविश्वास और संशय से ग्रस्त रहती है। पितृगृह में रहते हुए जहाँ उसे वह अपना घर नहीं कह सकती, वहीं पतिगृह में होने वाले अनात्मीय व्यवहार को लेकर सदैव आशंकित रहती है। जायसी ने स्त्री जीवन के इस पक्ष को भी अपनी लेखनी के माध्यम से बड़े सहज ढंग से उठाया है। स्त्री मन में विवाहोपरांत उसके प्रति ससुराल पक्ष से होने वाले व्यवहार की आशंका की अभिव्यंजना अग्रलिखित पंक्तियों में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है –

'ए रानी! मन देखु विचारी। एहि नैहर रहना दिन चारी।
जौ लगिं अहै पिता कर राजू। खेलि लेहु जो खेलहु आजू।
पुनि सासुर हम गवनव काली। कित हम कित यह सरवर पाली।
सासु ननद बोलिन्ह जिउ लेही। दारुन ससुर न निसरै देही।
पिउ पियार सिर ऊपर, पुनि सो करै दहुं काह।
दहुं सुख राखै की दुख, दहुँ कस जनम निवाह॥

जायसी ने के नारी की उस नियति से जुड़ी हुई भावभूमि की व्यंजना है जो हमेशा से दो परिवारों द्वारा स्वीकृति और अस्वीकृति के बीच झूलती रहती है। स्त्री जीवन टूटी डाली की तरह है जो पति के परिवार रूपी वृक्ष के साथ हमेशा विजातीय ही बनी रहती है। उसका मन हमेशा अपने जीवन और भविष्य को लेकर आशंकित बना रहता है। वह होने न होने के मध्य जीवन भर झूलती रहती है। स्त्री जीवन की यह विसंगति प्राचीन काल से वर्तमान काल तक जस की तस बनी हुई है। जो स्थिति पद्मावती और उसकी सहेलियों की पद्मावत में होती है वही आज की नवयौवनाओं के जीवन की है। यदि अंतर आया भी है तो बहुत कम, जिसे हम स्त्री स्वातंत्र्य का परिचायक तो नहीं कह सकते हैं।

पद्मावत की दूसरी नायिका है रानी नागमती। नागमती भी स्त्री विमर्श का बहुत सशक्त चरित्र है। राजा रत्नसेन पद्मावती के रूप सौंदर्य का बखान सुन उसे प्राप्त करने के लिए यूं चल पड़ता है जैसे वह कोई अविवाहित युवक है। उसे नागमती की पीड़ा का तनिक भी आभास नहीं होता। वह एक पल को भी नहीं सोचता कि जो स्त्री उसके साथ परिणय सूत्र में बंधकर आई है और वह उसके जीवन का एकमात्र सहारा है उसका क्या होगा। नागमती विरह की अग्नि में जलती रहती है। उसकी पीड़ा का अहसास अग्रलिखित पंक्तियों से होता है -

'पिऊ से कहेउ संदेसडा हे भौंरा हे काग। '

जायसी का वियोग चित्रण हिंदी साहित्य के उत्तम चित्रणों में से एक है और उसे विरह वर्णन का मील का पत्थर कहना अनुचित न होगा। नागमति वियोग के माध्यम से जायसी ने समाज को बतलाया है कि नारी अपने अंदर प्रेम की कसक लिए

अपनी प्रतिष्ठा को भूलकर साधारण स्त्री की भांति व्यवहार करती। वह जिधर देखती है हर व्यक्ति यहां तक पशु पक्षी एवं वनस्पति भी उसे मिलन के सुख से प्रसन्न दिखाई देता है तथा वह स्वयं हतभागिनी अनुभव करती है।

नागमति पति वियोग में किस प्रकार दिन रात तड़पती है, इसकी बानगी अग्रलिखित पंक्तियों में दृष्टव्य है-

झुरि झुरि पींजर हौं भई, बिरह काल मोहि दीन्ह ॥
पिउ बियोग अस बाउर जीउ। पपिहा निति बोलै पिउ पीऊ ॥
अधिक काम दाधै सो रामा। हरि लेइ सुवा गएउ पिउ नामा ॥
बिरह बान तस लाग न डोली। रकत पसीज, भींजि गइ चोली ॥
सूखा हिया हार भा भारी। हरे हरे प्रान तजहिं सब नारी ॥
खन एक आव पेट महँ ! साँसा। खनहिं जाइ जिउ, होइ निराशा ॥
पवन डोलावहिं, सीचहिं चोला। पहर एक समुझहिं मुख बोला ॥
प्रान पयान होत को राखा ? को सुनाव प्रीतम कै भाखा ?

वह प्रीतम से मिलन की आस में सभी से मनुहार करती हुई दिखाई देती है,

चित्रा मित्र मीन घर आवा। पपिहा पीउ पुकारत पावा ॥
उआ अगस्त, हस्ति घन गाजा। तुरय पलानि चढ़े रन राजा ॥
स्वाति बूंद चातक मुख परे। समुद सीप मोती सब भरे॥
भा परगास, बाँस बन फूले। कंत न फिरे बिदेसहिं भूले।

चकई निसि बिछुरै दिन मिला। हौं दिन राति बिरह कोकिला ॥
रैनि अकेलि साथ नहिं सखी। कैसे जियै बिछोही पखी ॥
बिरह सचान भएउ तन जाड़ा। जियत खाइ औ मुए न छाँड़ा ॥
रकत ढुरा माँसू गरा, हाड़ भएउ सब संख।.

चित्रलेखा जायसी की एक वर्णनात्मक कविता है जो कि बिना शीर्षक के भिन्न सर्गों में विभाजित है। यह राजकुमारी चित्रलेखा और राजकुमार प्रीतम सिंह की प्रेम कथा है। यह कथा संयोगों एवं नाटकीय विडंबनाओं का अनुपम उदाहरण है। चित्रलेखा की तड़प आज की नारी में भी परिलक्षित होती है। पद्मावत के रचनाकाल से लेकर वर्तमान तक पति पत्नी का रिश्ता ऐसा ही है। आज भी ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं जहां विवाहेत्तर संबंध पनपते हैं और पति अपनी पत्नी की तनिक भी परवाह किए बगैर दूसरी स्त्री के पहलू में जा बैठता है।

तुलसीदास की स्त्री चेतना

हिंदी रामभक्ति काव्य धारा के पुरोधा तुलसी ने स्त्री विमर्श के विविध पक्षों को लेकर अपनी रामकथा का ताना-बाना बुना है। वहाँ कथा सूत्रा तो परम्परा से गृहीत हैं लेकिन रचनातंत्रा और रहस्य तुलसीदास जी का अपना है। उन्होंने स्त्री अस्मिता से

जुड़े विविध प्रसंगों को उठाकर स्त्री विमर्श की धारा को कई पक्ष प्रदान किए हैं। सीता स्वयंवर, सीता का वनगमन, सूर्पणखा प्रसंग, सीता-हरण प्रसंग, अहल्या प्रसंग, तारा, मन्दोदरी आदि के प्रसंग नारी-विमर्श के विविध पक्षों को बड़े सशक्त ढंग से व्यंजित करते हैं। बहुत से विद्वानों ने तुलसी पर नारी विरोधी होने का आरोप लगाया है परंतु ऐसे प्रसंगों की कभी नहीं है उनके काव्य में जहां उन्होंने स्त्रियों की पीड़ा को बहुत मार्मिक ढंग से उठाया है। तुलसी ने स्त्री के शील की जकड़न की कसमसाहट को स्त्री के द्वारा ही व्यक्त कराया है। शील के नाम पर स्त्री की मानसिकता की जकड़न को बहुत ही अच्छी तरह से व्यक्त किया है। यौवन काल से स्त्री को लड़की होने का एहसास उसे हमेशा विवशता का बोध कराता है। यहाँ तक कि अपने जीवन-साथी के वरण के लिए भी वह स्वतंत्र नहीं है। वरण तो दूर की बात अपने मन की बात वह किसी से कह भी नहीं सकती कि उसे कैसा वर चाहिए। सीता-स्वयंवर प्रकरण स्वयंवर प्रथा पर करारा व्यंग्य है। स्वयंवर में यौवना द्वारा अपने पति का स्वयं ही वरण करने की अवधारणा निहित है। तुलसी इस अवधारणा को अच्छी तरह जानते हैं। वे इस प्रकरण को रामकथा में उठाते हैं। गीतावली में तुलसी की सीता अपने होने वाले पति के सम्बन्ध में अपनी कामना प्रकट करना चाहती है लेकिन लड़की होने का बोध और तज्जन्य शील के बंधन में जकड़ी उसकी विवशता उसे अपनी कामना व्यक्त करने से रोक देती है –

पूजा पारवती भले भाय पाँय परिकै।
सजल, सुलोचन, सिथिल तनु पुलकित,
आवै न वचन, मन रह्यौ प्रेम भरिकै।
अंतरजामिनी, भवभामिनी, स्वामिनी सौं हैं,
कही चाहौं बात, मातु अन्त तौ हौं लरिकैं।

रामचरितमानस की रामकथा का धनुष यज्ञ प्रसंग स्त्री जीवन की नियति को लेकर तुलसी के स्त्री विमर्श का बहुत ही सशक्त पक्ष है। तुलसी की रामचरित मानस की सीता राम से विवाह करना चाहती है लेकिन पिता की असंगत हठ को लेकर शंकित मन में उठता, उसका करुण क्रन्दन नारी-जीवन की विवशता की कथा प्रकट करता है, जिसे अग्रलिखित पंक्तियों से समझा जा सकता है-

'जानि कठिन सिव चाप विसूरति।
चली राखि उर स्याम सुमूरति॥'

आचार्य तुलसी दास का स्त्री विमर्श केवल सीता के मन के क्रन्दन तक ही सीमित नहीं है वे नारी मन में छिपी विद्रोही भावना को सीता के स्वर के माध्यम से व्यक्त करते हैं। सीता की माता राजा जनक की अविवेकपूर्ण प्रतिज्ञा से सीता के जीवन के प्रभावित होने की आशंका से पति के प्रति विद्रोही स्वर में मुखर हो उठती है-

सखि सब कौतुक देखनिहारे। जेउ कहावत हितू हमारे॥
कोउ न बुझाइ कहइ गुर पाहीं। ए बालक असि हठभल नाहीं।
भूप सयानप सकल सिरानी। सखि विधि गति कछु जात ना जानी॥

रामकथा के पूरे रचनातंत्र में तुलसी के नारी-विमर्श को यदि देखना है तो उसमें नारी जीवन संदर्भों पर गंभीरता से शोध करना होगा और उसमें निहित अंतरभाव को समझना होगा। तभी तो तुलसी यह कथन सदा इस दिशा में प्रेरणादायक है-

'मुख मुखाहि लोचन स्रवहि सोक न हृदय समाइ।
मनहूँ करुन रस कटकई उत्तरी अवध बजाइ'।

मीराबाई की स्त्री चेतना

कृष्ण-भक्ति की सम्प्रदायगत परिपाटी से पृथक, सम्प्रदाय निरपेक्ष भक्त कवियों में मीराबाई प्रमुख हैं। मीराबाई की कृष्णभक्ति किसी मत विशेष या सम्प्रदाय विशेष के अन्तर्गत न होकर पूर्णत: मुक्त थी। उनकी वह मुक्त अथवा स्वतंत्रता की भावना न केवल सम्प्रदाय निरपेक्ष रहने तक सीमित थी बल्कि उन तमाम रूढ परम्पराओं धार्मिक,सामाजिक और राजकीय बन्धनों के अस्वीकार में भी थी। मीरा का सम्पूर्ण जीवन- बन्धन मुक्त रहने का पर्याय हैं। उनकी बन्धन मुक्ति , स्त्री मुक्ति का प्रेरणार्थक प्रादर्श है। श्री कृष्ण की अनन्य आराधिका, कृष्ण प्रेम की साधिका, विरह की प्रतिमूर्ति, पीड़ा का आगार और रस का सागर आदि विशेषताओं और उपमाओं से अभिव्यंजिता, कृष्ण: भक्ति के गेय पदों की रचयिता मीराबाई के व्यक्तित्व और कृतीत्व दानों ही अतिशय विलक्षण थे। जन्म से लेकर यौवन की दहलीज पर कदम रखने तक उनका काल राजप्रासाद के वैभवपूर्ण वातावरण में व्यतीत हुआ था। विलासिता के सर्व साधन सुलभ होने के बावजूद उन्होंने श्री कृष्ण की भक्ति को श्रेष्ठ और वरेण्य माना। कृष्ण प्रेम की दीवानगी की चरमावस्था यदि कहीं देखने को मिलती हैं, तो वह केवल मीरा के जीवन में ही दिखाई देती है। यही वजह है कि मीरा एक व्यक्ति वाचक संज्ञा से जातिवाचक संज्ञा में तब्दील हो गई है। आज भी किसी विरहिणी नारी को देखकर उसे मीरा बाई शब्द से संबोधित किया जाता है। मीरा दुख और विरह का प्रतीक बन गई –

ये री मैं तो प्रेम दीवाणी, मेरा दरद न जाणें कोया॥

मीरा ने श्री कृष्ण को पति मानकर उनकी आराधना की । ईश्वर की भक्ति किस रूप में एक भक्त करता है,वह उसके भाव पर आधारित होता है। उससे अपना संबंध किस रूप में जोड़ता है,वह भक्त की अपनी इच्छा पर निर्भर है। गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है -

जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखहि तिन तैसी॥

मीराबाई ने स्वयं को कृष्ण की पत्नी माना और अपना सारा जीवन,तन, मन, धन और आत्मा को श्री कृष्ण में ही तिरोहित कर दिया। अपने एक पद में उसने गाया है -

मेरो तो गिरधर गोपाल, दूसरों न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई॥

सामान्यत: मीरा की कृष्ण-भक्ति व्यक्तिपरक सरोकारों तक सिमटी हुई दिखाई देती है, किन्तु गहराई से चिंतन करें तो उनका संपूर्ण व्यक्तित्व और कृतीत्व सामाजिक सारोकारों से गुम्फित परिलक्षित होता है। सामाजिक सरोकारों में सबसे महत्वपूर्ण है, स्त्री मुक्ति का संघर्ष। मीरा को स्त्री जागरण प्रेरणास्रोत कहा जाए तो अतिश्योक्ति न होगी। वे नारी जाति के विद्रोहात्मक साहस और संघर्ष का प्रतीक है। मीराबाई राजस्थान के राठौर राजपूतों की मेडतिया- शाखा के प्रवर्तक राव दूदाजी के पुत्र रत्नसिंह की पुत्री थी। रत्नसिंह बारह गाँवों के जागीरदार थे। उनकी माता का नाम कुसुमकुंवर था। माता की असमय मृत्यु के कारण उसे बचपन में ही माँ की स्नेहिल छाया से वंचित होना पड़ा। राव दूदाजी ने उसे मेडता में अपने पास बुला लिया। मीरा के पितामह राव दूदाजी धार्मिक आस्था वाले व्यक्ति थे। वे उदार वैष्णव थे। उन्होंने मेडता में चतुर्भुजा जी के मंदिर का निर्माण कराया था। परिवार के धार्मिक वातावरण के फलस्वरूप मीरा में भगवत प्रेम के संस्कार बचपन में पड़ चुके थे। छोटी उम्र से ही वह गिरधर गोपाल की आराधना करने लगी थी। बारह वर्ष की आयु में मीराबाई का विवाह मेवाड़ के राणा सांगा के पुत्र भोजराज के साथ हुआ। कहा जाता है कि विवाह के फेरों के पूरा होते ही मीरा दौड़कर अपने कक्ष में पहुँची और श्री कृष्ण की मूर्ति के सामने सिर झुका दिया। जब बिदाई का वक्त आया तो उसने बहुत भारी आवाज में पिता से कहा - यह गिरधर गोपाल की मूर्ति भी मेरे साथ-साथ जायेगी। उसकी बात मान ली गई। इस प्रकार गिरधर तथा मीरा की डोली उठी और वह राजा की पुत्रवधू बनकर चित्तौड़गढ़ जा पहुँची। मीरा के वैवाहिक जीवन को मात्र सात वर्ष ही हुए थे,तभी कुंवर भोजराज का स्वर्गवास हो गया। उन्नीस वर्ष की युवती मीरा विधवा हो गई। इस दुखद घटना के बाद मीरा का जीवन- संघर्ष शुरू हुआ। तत्कालीन हिन्दु समाज, धार्मिक मान्यताओं और रूढ़ परंपराओं का अनुगामी था। उस समय में समाज में स्त्री का कोई स्वतंत्र अस्तित्व था ही नहीं। स्त्री पुरूष की जायज नाजायज आज्ञाओं के पालन करने वाली आज्ञाकारिणी के अतिरिक्त कुछ नहीं थी। समाज में जाति-पांति,ऊँच-नीच की भावनाएँ प्रबल थीं। परदा प्रथा का दौर था। पति की मृत्यु होने पर पत्नी को सती होने का नियम था। सती-प्रथा में यही प्रदर्शित किया जाता था कि पति की मृत्यु होने पर पत्नी स्वेच्छा से प्रसन्नतापूर्वक उसके शव के साथ चिता में भस्म होना चाहती है, जबकि वास्तविकता यह थी कि आधिकांश नारियाँ जीना चाहती थी। जीवित रहने के लिए वैधव्य का कष्ट सहना भी उन्हें मंजूर होता था किन्तु रूढ़ धार्मिक मान्यताओं का सहारा लेकर निर्दोष महिलाएँ मुर्दो के साथ भस्मीभूत कर दी जाती थी। एक कुलीन नारी का चाहे वह सधवा हो अथवा विधवा घर की चार दीवारी को

लांघ पाना असंभव था। समाज में नारी के लिए तरह-तरह की वर्जनाएं व्याप्त थीं। नारी को किसी प्रकार को कोई भी अधिकार नहीं था। पुरूष को सभी तरह की स्वतंत्रता थी। एक पुरूष अनेक महिलाओं के साथ विवाह कर सकता था किन्तु नारी के विधवा होने पर वह पुनर्विवाह की कल्पना तक नहीं कर सकती थी। पुरूषों के द्वारा दी गई यातनाओं को चुपचाप सहन करना ही उसकी नियति थी। ऐसे वातावरण में मेवाड़ की रानी राणा सांगा की कुलवधू मीराबाई ने तत्कालीन समाज में व्याप्त हर उस परंपरा को चुनौती दी जिसमें नारी के अपमान या अवहेलना की गंध थी। उन बेड़ियों तोड़ दिया। सोलहवीं शती में पति की मृत्यु होने पर पत्नी को सती होने की परंपरा थी। मीराबाई ने उस अमानुषिक परंपरा पर पहला आघात किया। उसने सती होने से इंकार कर दिया –

गिरधर मासयॉ सती न हास्यॉ,मन माह्यॉ धन नामी।

वे पति की मृत्यु के बाद वह सती नहीं हुई। उस काल में यह बहुत बड़ी घटना थी। एक तरफ यह राजघराने की प्रचलित परंपरा का उलंघन था तो दूसरी तरफ लोकमर्यादा का खंडन। एक प्रतिष्ठित शौर्ययुक्त राजवंश के लिए यह असहनीय कृत्य था किन्तु मीरा इन बातों से विमुख होकर अपने आराध्य कृष्ण की भक्ति में खो गई। उसके पास एक ही लक्ष्य था, भगवान श्री कृष्ण को पाना। वे कृष्ण की प्राप्ति के लिए वह राजमहल की चार दीवारी को लांघकर कृष्ण की दीवानी बन कर जन-जन के बीच गली-गली में अलख जगाने लगी -

छांडि दई कुल कानि कहा करिहै कोई।
संतन ढिंग बैठि-बैठि लोक लाज खोई॥
अंसुवन जल सींचि-सींचि प्रेम-बेलि बोई।
अब तो बेलि फैल गई आनंद फल होई॥

यह मीरा का ही साहस था कि उन्होंने कुल-मर्यादा और लोक लाज को त्याग दिया। यदि उद्देश्य महान हो तो उसकी प्राप्ति के लिए सब कुछ त्यागा जा सकता है किन्तु यह इतना आसान भी नहीं हैं। इसके लिए मीरा को प्रताड़नाओं का सामना करना पड़ा। उन्हें जहर देकर समाप्त कर देने का षड़यंत्र भी किया गया। मीरा ने हर तरह के षड़यंत्रों और बाधाओं का सामना धैर्य और साहस के साथ किया। उसमें एक राजपूत रमणी का साहस और अपने गिरधर गोपाल के प्रति अटूट निष्ठा थी। जिसके चलते हर कठिनाई को झेलती हुई भक्ति रूपी सागर में डूबती चली गई। मीरा के अनेक पद ऐसे है,जिनमें राणाजी को संबोधित किया गया है। यह संबोधन राणा विक्रमादित्य के लिए है, जिन्होंने मीरा के जीवन को समाप्त करने के लिए विष का प्याला भिजवाया था।

अरे राणा पहले क्यों न बरजी, लागी गिरधरिया से प्रीत।
मार चाहे छांड राणा नहीं रहूं मैं बरजी।
सगुन साहिब सुमरता रे मैं थारे कोठे खटकी।

राणाजी ने भेजा विषरा प्याला कर चरणामृत गटकी।

राणा के द्वारा विष का प्याला और जहरीले सर्प की पिटारी भिजवाने की घटनाओं का उल्लेख मीरा के अनेक पदों में हुआ है। इससे यह आभास होता है कि इन घटनाओं का उल्लेख बहुत गहरा प्रभाव मीरा के मनोमस्तिष्क में पड़ा था। अपने पदों में विष का प्याला भिजवाने की घटना का बार- बार जिक्र करके मीरा ने जैसे राणा के कुचक्रों पर व्यंग्य किया है तथा उसे संबोधित करके एक प्रकार से चुनौती भी दी है कि उसके षड़यंत्रों से घबरा कर वह अपने रास्ते से भटकने वाली नहीं है। एक सजग और साहसी नारी के विरोध का दर्शन इन पदों से होता है।

मीरा मगन भई हरि के गुण गाय।
सांप पिटारा राणा भेज्यो,मीरा हाथ दिया जाय।
न्हाय धोय जब देखण लागी,सालिकराम गई पाय।
जहर का प्याला राणा भेज्या,अमृत दीन्ह बनाय।
न्हाय धोय जब पीवण लागी हो अमर अंचाय।
सूल सेज राणा ने भेजी दीज्यो मीरा सुलाय।
सांझ भई सोवण लागी, मानो फूल बिछाये।

मीरा के अनेक पदों में उसके संघर्ष और विरोध की ध्वनियां सुनाई देती हैं। उन्होंने अपने प्रभु की भक्ति में लीन होकर महल-अटारी सब त्याग दिया। राणा के शहर को भी छोड़ दिया। उसने लोक-लाज, बनाव-श्रृंगार को त्याग कर सन्यासिनी की भगवा चादर ओढ़ ली फिर भी उनका देवर राणा विक्रम ने उसके प्रति बैर भाव को नहीं त्यागा। राणा को ज्यो बच्छन में कैर कह कर अपना विरोध भाव किया है-

राणाजी थे क्यां ने राखो म्हासूं बैर।
थे तो राणाजी म्हाने इसडा,लागे ज्यों बच्छन में कैर।
महल अटारी हम सब त्यागा, त्याग्यों थारो बसनो सहर।
काजल -टीकी राणा हम सब त्यागा, भगवी चादर पहर।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर इमरित कियो जहर॥

साधु-संतों के पहुँचने पर लोक लाज का परित्याग करके मीरा उनके आदर सत्कार में लग जाती थी। ईश दर्शन के लिए वह अनेक बार मंदिरों में चली जाती और प्रेम के आवेश में पैरों में घुंघरू बांधकर हाथों में करताल लेकर भगवान के सामने नाचने लगती। मीरा के रूप यौवन और वैधव्य तीनों एकत्र हो गये थे। यह सामंजस्य समाज की दृष्टि में जड़ता और संदेह की चिंगारियों को अनायास जन्म देता था। राजकीय मर्यादाओं को भंग करके मीरा जिस प्रकार साधु संतों से सत्संग करती थी, वह राज परिवार के लोगों को भी सहन नहीं हो रहा था। पराये व्यक्तियों के साथ बैठकर

भजन गाना और उनकी उपस्थिति में एक राजपरिवार की कुलवधू का नृत्य करना किसी को सह्य नहीं था। इससे राजकीय मर्यादाओं को चोंट पहुंचती थी। राणा विक्रमादित्य के अत्याचारों के पीछे एक कारण यह था तो दूसरी तरफ उनका स्वयं का अहंकारी, विलासी और क्रूर स्वभाव भी था। मीरा राणा सांगा की ज्येष्ठा कुलवधू थी। इस नाते राजपरिवार में उसका प्रमुख स्थान होना चाहिए था किन्तु वह सब कुछ त्यागकर सन्यासिनी बन चुकी थी फिर भी राणा को उससे दुश्मनी क्यों थी, यही प्रश्न मीरा ने अपने पद में पूछा है। मीरा अपनी तथा राजपरिवार की बदनामी को अच्छी तरह समझती थी। इसके बावजूद वह सब कुछ स्वीकार करती हुई प्रेम-पथ की यात्रा करती रही-

राणाजी म्हाने या बदनामी लागे मीठी।
कोई निन्दो कोई बिन्दो मैं चलूंगी चाल अनूठी।
सांकडली सेर्या जन मिलिया, क्यूं कर फिरूं अपूठी।
सत संगति मा ग्यान सुणैछी, दुरजन लोगा ने दीठी।
मीरा रो प्रभु गिरधर नागर दुरजन जलो जा अंगीठी।

निन्दा और प्रसंशा से परे रह कर और किसी की भी परवाह किये बगैर अपने निश्चय पर अटल रहना मीरा का विशेष गुण था। अपने निश्चय पर अटल रह कर आगत कठिनाईयों से सतत संघर्ष करते रहना किसी भी क्रांतिकारी का आधारभूत गुण होता है। नारी मुक्ति के परिपे्रक्ष्य में मीरा का जीवन-वृत्त क्रांति का प्रथम सोपान है। मीरा बाई भी भक्तिकाल का सशक्त हस्ताक्षर हैं और मीरा के काव्य व्यक्तित्व को दबा पाना सम्भवत: इसलिए आसान नहीं रहा होगा क्योंकि उनका व्यक्तित्व मठवाद के दायरे से बाहर था, उनकी अधिकतर कविताएँ राजस्थान और आसपास की निम्न जातियों के लोगों में घर-घर गाई जाती रहीं और उसके संकलन का आधार भी यही लोग बन पाए और यह भी कि मीरा का जिक्र तत्कालीन सभी भक्तों की रचनाओं में मिल जाता है। भक्ति काल की कवियित्रियों की रचनाएँ आरम्भिक तौर पर इसी मठवाद का शिकार होने के कारण, द्वितीय रूप में अन्य कारणों से गुमनामी के अँधेरे रह गई होंगी। भक्ति काल का समय अपेक्षाकृत रूप से क्रियाशीलताओं का दौर रहा जिसमें पुरानी रूढ़ियों एवं कुरीतियों पर प्रहार किसी न किसी रूप में पुरूष एवं महिला लेखकों ने किया। यहां तक कि निम्न जातियों के लोगों ने भी अपनी सामाजिक समस्याओं को भक्ति के ढाँचे के भीतर प्रखर शब्दों में सामने रखा। स्त्रियाँ भी अपनी निहायत निजी व्यथाओं को कहने से नहीं हिचकिचाईं। मीरा का काव्य इसका प्रमाण है। भक्ति काल की दूसरी कवयित्रियों ने जो रचनाएँ कीं उनके बारे में इतना तो कहा ही जा सकता है कि केवल उन्हीं रचनाओं का जिक्र अभी तक किया जाता है जो कि पितृसत्तात्मक दर्शन के ढाँचे में अधिक से अधिक उपयुक्त रहीं।

अन्य कृष्ण काव्यों में स्त्री चेतना

हिंदी भक्ति काव्यधारा में कृष्णकाव्य का रचनातंत्र तो पूरी तरह से स्त्री अस्मिता की भावभूमि का पर्याय ही है। आध्यात्मिक आवरण को हटाकर कृष्ण कथा को सामाजिक संरचना की दृष्टि से देखा जाए तो उसमें पुरुष-मनोविज्ञान और स्त्री मनोविज्ञान के संदर्भ में स्त्री जीवन की अस्मिता का ऐसा संसार दिखाई देता है जिसमें स्त्री जीवन की खुशी नाम मात्र की है और कष्ट से सम्पूर्ण जीवन आच्छादित है। क्रमबद्ध रूप में पुरुष मनोविज्ञान के जाल में फँसी हुई स्त्री का पश्चाताप और करुण क्रंदन ही अधिक है जो स्त्री विमर्श का यथार्थ है।

सूरसागर का कृष्ण काव्य ही नहीं साहित्य लहरी का नायिका भेद भी सूर के नारी-विमर्श का एक आयाम है। सूरसागर में भ्रमरगीत प्रकरण स्त्री विमर्श का एक सशक्त बिंदु है। भ्रमरगीत प्रकरण में गोपियों के रूप में यदि स्त्री जीवन पर दृष्टिपात किया जाए तो वह समाज का एक ऐसा सत्य है जो आज भी हमारे सामने एक ज्वलंत समस्या के रूप में विद्यमान है। सूर कृष्ण के द्वारा गोपियों की उपेक्षा को वर्ग-चेतना के संदर्भ में देखना चाहते हैं। सूर की गोपियाँ कृष्ण को दो रूपों में देखती हैं। प्रथम गोकुल के कृष्ण-जो गोपाल है, उनके ग्रामीण परिवेश के साथी हैं। द्वितीय मथुरा के कृष्ण जो राजा है - यादवनाथ हैं। गोकुल से मथुरा जाकर कृष्ण का वर्ग बदल जाता है। वह सामान्य ग्वाले से राजा हो जाते हैं और वहाँ जाकर एक नारी कुब्जा को अपना लेते हैं। कुब्जा तन से कुब्जा हो या न हो लेकिन वह मन से कुब्जा है ही, जो गोपियों के कृष्ण को गोपियों से छीन लेती है। कृष्ण भी राजा होकर गोपियों को छोड़ देते हैं और पराकाष्ठा तो तब होती है, जब वे उद्धव के द्वारा गोपियों को दूसरे आलम्बन के वरण का संदेश देते हैं। ऐसी प्रपंचना स्त्री जीवन के साथ छलना वास्तव में कुत्सित विचारधारा की परिचायक है। कृष्ण गोपियों के साथ रास लीला तो करता है परंतु विवाह के समय किसी और को अपना लेता है। वर्तमान समाज में ऐसा अक्सर देखा जाता है कि एक युवक प्रेमिका से बहुत कम विवाह करना चाहता हो। जब प्रमिका उसे अपने सर्वस्व न्यौछावर का हवाला देती है तो वह पतिता घोषित करने में तनिक भी नहीं हिचकिचाता। सूर के स्त्री विमर्श की व्यंजना इस बिन्दु पर अग्रलिखित पंक्तियों में देखी जा सकती है –

कहौ कहाँ तैं आये हौ।
जानति हौं अनुमान मनो तुम जादवनाथ पठाए हौ॥
मधुवन की कामिनी मनोहर तहँहिं जाहु जहँ भाए हौ॥

अपना स्वार्थ सिद्धकर पुरूष हमेशा अपनी प्रेमिका को सिद्धांतों को हवाला देते हुए अन्यत्र विवाह के लिए कहता है वही कार्य कृष्ण के द्वारा गोपियों के साथ उद्धव के

माध्यम से किया जाता है। उध्दव जो हैं योग और ब्रह्म के ज्ञाता हैं उनका प्रेम से दूर दूर का कोई सरोकार नहीं है। जब गोपियाँ व्याकुल होकर उध्दव से कृष्ण के बारे में बात करती हैं और उनके बारे में जानने को उत्सुक होती हैं तो वे निराकार ब्रह्म और योग की बातें कर उन्हें अन्यत्र मन लगाने का संदेश देते हैं। गोपियां उद्धव के किसी भी तर्क को न मानकर स्त्री स्वतंत्रता का परिचय देती है और समाज में व्याप्त प्रपंच पर करारा प्रहार करती है-

बहि उपंगसुत आई गए।
सखा सखा कछु अंतर नाहिं, भरि भरि अंक लए।।
अति सुन्दर तन स्याम सरीखो, देखत हरि पछताने ।
ऐसे कैं वैसी बुधी होती, ब्रज पठऊं मन आने।।
या आगैं रस कथा प्रकासौं, जोग कथा प्रकटाऊं।
सूर ज्ञान याकौ दृढ क़रिके, जुवतिन्ह पास पठाऊं।।

गोपियां कृष्ण द्वारा किए गए छल से बहुत आहत होती है और वे सीधे तौर पर तथा विभिन्न प्राकृतिक माध्यमों से उद्धव को जली-कटी सुनाती हैं, वे उध्दव पर काला भ्रमर कह कर खूब कटाक्ष करती हैं।

रहु रे मधुकर मधु मतवारे।
कौन काज या निरगुन सौं, चिरजीवहू कान्ह हमारे।।
लोटत पीत पराग कीच में, बीच न अंग सम्हारै।
भारम्बार सरक मदिरा की, अपरस रटत उघारे।।
तुम जानत हो वैसी ग्वारिनी, जैसे कुसुम तिहारे।
घरी पहर सबहिनी बिरनावत, जैसे आवत कारे।।
सुंदर बदन, कमल-दल लोचन, जसुमति नंद दुलारे।
तन-मन सूर अरपि रहीं स्यामहि, का पै लेहिं उधारै।।

स्त्री विमर्श के संदर्भ में यदि सूर के इन प्रकरणों को देखा जाए तो आज भी ऐसे धूर्त पुरुष मिलते हैं जो पढ़-लिख अच्छा पद प्राप्त करते ही अपनी अशिक्षित ग्रामीण पूर्व परिणीता को धोखे में छोड़कर उसके विश्वास को तोड़ते हुए उसे उसकी नियति पर छोड़ देते हैं इसके साथ समाज में ऐसी कुब्जाएँ भी है नारी के अधिकारों पर आघात करके ऐसे पुरुष को अपनी धूर्तता के जाल में फँसा लेती हैं और हद तो तब होती है जब ऐसी स्त्री-पुरुष नारी के प्रति संवेदनापूर्ण लेखन करते हुए बेशर्मी के साथ स्त्री विमर्श का झंडा उठा लेते हैं।

सूर की साहित्यलहरी सूर के नारी-विमर्श को एक नया आयाम देती है। साहित्य लहरी के वर्ण्य-विषय के केन्द्र में नायिका-भेद है। नायिका-भेद में स्वकीया नायिका का स्वरूप नारी का पूर्ण आदर्श माना गया है। सूर नारी-विमर्श के धरातल पर खड़े होकर

इस रूप में पुरुष द्वारा थोपे गए आदर्श की स्वीकृति-अस्वीकृति के बीच झूलते दिखाई देते हैं। सूर की राधा के स्वकीया के रूप में चित्रित आदर्श पर एक गोपी व्यंग्य करती हुई कहती है –

राधे कियौ कौन सुझाव।
प्रानपति वेदन विभूषित सुन गुन चितचाव॥
भानुवंसी रस सुधागृह हैं न निकसन पाव।
रजनिचर गुन जान....॥

गोपी राधा के रूप में नारी द्वारा पुरुष के लिए एक पक्षीय सर्वतो भावेन समर्पण पर प्रश्न चिह्न लगाती है। गोपी का यह प्रश्न चिह्न नारी-जागरण की भूमिका के लिए सूर के नारी-विमर्श की रूपरेखा की एक दिशा है।

साहित्य लहरी में नायिका-भेद के प्रसंग से सूर ने नारी-जीवन और नारी-अस्मिता से सन्दर्भित अनेक प्रश्न उठाकर नारी-विमर्श को यथार्थ दिशा देने का प्रयास किया है। पुरुष द्वारा अल्पवयस्यक बालिका के यौन-शोषण की समस्या को सूर मुग्धा नायिका के एक भेद अज्ञात यौवना के प्रसंग से उठाते हैं। काम भावना से प्रेरित पुरुष यह नहीं देखता कि जिस पर कुदृष्टि डाल रहा है वह शारीरिक और मानसिक रूप से काम-संदर्भों के लिए उपयुक्त है या नहीं। साहित्य लहरी के निम्न पद में नारी-जीवन से संबंधित इस ज्वलंत समस्या की व्यंजना करते हुए सूर पुरुष द्वारा विवेक से काम लेने की सलाह देते हैं – ' हरि उर पलक धारौ धीर। हित तिहारे करत मनसिज सकल सोभातीर॥''

रीतिकालीन काव्य का प्रमुख आधार स्त्री है कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी क्योंकि रीतिवादी काव्य में नायिका का भगिनी वाला रूप महत्वपूर्ण नहीं है, नायिका वाला रूप ही प्रमुख है। रीति कालीन साहित्य में स्त्री के दुख को चाहे वो जायसी की नागमती हो या अन्य बढ़ाचढ़ा कर प्रस्तुत किया और स्त्री के प्रति रागात्मक संबंध दर्शाया गया। परंतु इस काल में भी स्त्रियों द्वारा रची गई कविताओं या अन्य प्रकार के साहित्य पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। जहां किसी धारा के मूल में ही स्त्री हो वहां बिना स्त्री के सवाल पर, सामाजिक स्थितियों के सवाल पर ठोस बात किए साहित्य की परम्परा तय नहीं की जानी चाहिए। हिंदी साहित्य की परम्परा को ठीक से निर्धारित करने के लिए तत्कालीन दौर के स्त्री साहित्य को पढ़े जाने की जरूरत है। यह साहित्य बहुनायकत्व और उससे उपजी तमाम स्त्री विरोधी प्रवृत्तियों से प्राप्त दंश की देन है।

हिंदी साहित्य के भक्तिकाल में नाभादास कृत भक्तमाल में कवियित्रियों की एक सूची है - 'सीता, झाली, सुमति, शोभा, प्रभुता, उमा, भटियानी गंगा, गौरी, कुंवरि,

उबीठा, गोपाली, गणेश देवरानी, कला, लखा, कृतगढ़ी, मानुमती, सुचि, सतभामा, जमुना, कोली, रामा, मृगा, देवा, देभक्तन, विश्रामा, जुग जेवा कीकी, कमला, देवकी, हीरा, हरिचेरी पोषे भगत कलियुग युवती जन भक्त राज महिमा सब जाने जगत।' ये युवती भक्तजन हैं। भक्तों में प्राय: सभी साहित्य के साथ सरोकार रखते हैं, जैसी भी हो सभी कविता करते हैं, कुछ काव्य वैशिष्ट्य के कारण भक्ति काल के स्तम्भ रचनाकार हैं, शेष भी हैं, फिर स्त्री भक्तजन बिना काव्य सर्जना के मंदिरो में भगत सेवा करने में लीन रह गई हों, ऐसा नहीं माना जा सकता है। कुछ गायिकाएं रहीं होंगी तो कुछ रचनाकर भी निश्चित रूप से रही होंगी।

हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन में किसी पुरुष कवि विशेष के विवरण के साथ ही उससे सम्बन्धित स्त्री का उल्लेख भर कर दिया जाता रहा है। कई बार किंवदन्तियों के आधार पर उन स्त्रियों का चरित्र निर्धारण करने तक का प्रयास भी दिखाई देता है। ऐसा करने में इतिहासकारों की एक खास मानसिकता का आभास मिलता है। रीति काल में घनानन्द और सुजान का काव्य और सम्बन्ध इस प्रश्न की दृष्टि से विचारणीय है। उनकी कविता में घनानन्द नाम की छाप जिनमें हैं वे कविताएँ भी घनानन्द की हैं और सुजान नाम की छाप वाली कविताएँ भी घनानन्द की ही हैं। भाव रूप लिंग भेद के दायरे को स्पष्ट विभाजित नहीं करता, फिर भी तर्कजाल घनानन्द के ही पक्ष में क्यों खड़ा होता है? उसके कारण को समझने के लिए आचार्य शुक्ल के इस कथन को पढ़ना जरूरी है - 'इन्होंने अपनी कविताओं में बराबर सुजान को संबोधित किया है जो श्रृंगार में नायक के लिए और भक्तिभाव में भगवान कृष्ण के लिए प्रयुक्त मानना चाहिए। कहते हैं कि इन्हें अपनी पूर्व प्रेयसी सुजान का नाम इतना प्रिय था कि विरक्त होने पर भी इन्होंने उसे नहीं छोड़ा।' तर्क संरचना ने एक वाक्य में कितने पहलू बदले हैं, यह तो स्पष्ट है ही उनके आगे लिखे कथन से इसका कारण भी साफ पता चलेगा।

आलम के बारे में डॉ. नगेन्द्र के संक्षिप्त इतिहास में मिलता है कि 'शेख आलम का ही जातीय नाम था। वही अपनी छाप यथावश्यक कभी आलम कभी शेख रख देता था। रंगरेजिन की कहानी या तो मनगढ़न्त है...।' इन आलोचकों का तर्क अपने भीतर यह मान्यता लिये रहता है कि स्त्री निजी सम्पत्ति है तो उसकी कविता भी हड़पने योग्य है। परम्परागत तर्क जब तक यह नहीं साबित करेगा कि सम्पत्तिधारक श्रेष्ठ है, या पुरुष की काबिलियत स्त्री से अधिक है अथवा जाति के उच्चतम पायदान पर स्थापितों के बीच प्रतिभा का स्तर उच्च होता है, साहित्य क्षेत्र में आने वाली स्त्रियाँ अधिकतर सामाजिक प्रतिष्ठा में अपना स्थान निम्नतम रखती हैं, तब तक परम्परागत ढाँचे को बनाए रखना सम्भव नहीं है। स्त्रियों की कविताओं को पुरुषों की साबित करके या स्त्रियों के चरित्र को हीन और अविश्वसनीय बनाकर या उनकी रचनाओं पर चुप्पी साधकर या उनकी रचनाओं को अज्ञात लेखक की कविता कहकर या कवयित्रियों की

पहचान कवि के रूप में बताकर अभी तक इसी परम्परागत उत्तरदायित्व का निर्वाह किया गया है।

मध्यकालीन हिन्दीभक्ति काव्य धारा आध्यात्मिक चेतना पर आधारित कोरा भाव-विलास ही नहीं है, उसमें कहीं वाच्यार्थ में तो कहीं प्रतीकार्थ में सामाजिक चिन्ताओं का सन्निवेश है और उसमें भी विशेषकर नारी जीवन की विषमताओं का, जो नारी-विमर्श की धारा को युगानुरूप निरन्तर गति देती हैं। हिन्दी के शोध कर्त्ताओं और विद्वानों से भक्त साहित्य में नारी-विमर्श को एक अविच्छिन्न कड़ी के रूप में देखे जाने की अपेक्षा की जा सकती है।

संदर्भ सूची

- राजपाल हिंदी शब्दकोश, सं.डॉ.हरदेव बाहरी,(1996)राजपाल एंड संस, दिल्ली
- डॉ. सुरेश कुमार एवं डॉ. रामानाथ शाही: ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी
- डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, मध्यकालीन बोध का स्वरूप
- राजमल बोरा: तुलनात्मक अध्ययन, 1992, 1992 वाणी प्रकाशन नई दिल्ली ISBN8170552389
- डॉ. सुरेश चंद्र :भक्ति आंदोलन और मध्य कालीन हिंदी काव्य (2013), अमन प्रकाशन, कानुपर आई.एस.बी.एन. : 978-93-82432-37-1 .
- गोपाल भार्गव: हरियाणा की कला एवं संस्कृति, (2011), ग्यान पब्लिसिंग हाउस, 8178358891
- डॉ.करूणाशंकर उपाध्याय:हिंदी साहित्य मूल्यांकन और मूल्यांकन (आलोचना), 2012 देशभारती प्रकाशन, शाहदरा,दिल्ली आई.एस.बी.एन. : 978-93-81488-16-4
- मीनाक्षी श्रीवास्तव, "भक्ति आन्दोलन को मीरा का अवदान" मीरा का मूल्यांकन (2006), श्याम प्रकाशन, जयपुर
- डॉ आद्या, 'मीराँ काव्य और लोक तत्व' (2005) नेशनल सेमिनार ऑन कल्चरल हेरीटेज ऑफ राजस्थान, इतिहास विभाग वनस्थली विद्यापीठ।
- मीनाक्षी श्रीवास्तव:"नारी चेतना के परिप्रेक्ष्य में" सांस्कृतिक यथार्थ के कथाकार विजय जोशी, प्रकाशक, साहित्यागार चौड़ा रास्ता, जयपुर
- रामकिशोर शर्मा:कबीर ग्रंथावली, (2006), लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली

वेबसाइट संदर्भ

- http://vangmaypatrika.blogspot.in/2008/06/blog-post_15.html
- http:www. bhartiyashodh.com
- http://www.sahityashilpi.com
- http://bharatdiscovery.org

- http://hi.wikipedia.org
- http://www.bharatdarshan.co.nz
- http://www.livehindustan.com
- http://shaktibartwal.blogspot.in